International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
Received: 22-06-2019; Accepted: 26-07-2019
www.educationjournal.in
Volume 4; Issue 5; September 2019; Page No. 88-90

अद्वैत वेदान्त दर्शन की तत्त्वमीमांसा

डॉ. मुकेश कुमार
सहायक प्रोफेसर, एल.एन.टी. शिक्षण महाविद्यालय, पानीपत, हरियाणा, भारत

सारांश
शंकर ने जिस सिद्धान्त का प्रवर्तन किया उसको अद्वैत वेदान्त कहा जाता है जिसका आधार प्रस्थानत्रयी (गीता, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र) है। शंकर ने ब्रह्मतत्त्व को परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है और यही परमतत्त्व अनेक रूपों में प्रतिभासित हो रहा है। जीव, जगत आदि का आभास कराने वाली ब्रह्म की अनादि शक्ति का नाम माया है इस माया शक्ति के द्वारा ही ब्रह्म, जीव, जगत और ईश्वर के रूप में स्वयं को प्रकट करता हुआ–सा प्रतीत होता है। इस माया शक्ति के द्वारा ही जीव–ब्रह्म का भेद, जीव–जीव का भेद, जीव–ईश्वर का भेद प्रतीत होता है। अतः इस भेद की प्रतीति मायाजनित या अज्ञानमूलक है। इस माया या अज्ञान शक्ति के द्वारा ही जीव को बंधन की प्रतीति होती है और वह जन्म–मृत्यु के चक्र में फंस जाता है। यह जीव विवेक वैराग्य, शटसम्पत्ति और मुमुक्षा से संपन्न होकर जब किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिश्ठ गुरु की शरण में जाता है तब वह गुरु की प्रसन्नता से श्रवण–मनन और निदिध्यासन आदि साधनों से ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करता है और जीवनमुक्त हो जाता है तथा मरणोपरांत विदेहमुक्त होकर परमगति को प्राप्त हो जाता है। शंकर के इन तत्त्वमीमांसीय विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि शंकर ने ब्रह्म की सत्ता को एकमात्र पारमार्थिक सत्ता के रूप में ग्रहण किया है और जीव, जगत को व्यावहारिक सत्ता और स्वप्न भ्रमादि को प्रातिभासिक सत्ता के रूप में ग्रण किया है। शंकर के सिद्धांत की पुष्टि में एक श्लोक प्रचलित है –
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः अर्थात् ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है और जीव ही ब्रह्म है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। शंकर के अद्वैत दर्शन का यही मूलाधार है।

मूल शब्दः ब्रह्मैव, जगन्मिथ्या, तत्त्वमीमांसा, शटसम्पत्ति

प्रस्तावना
सत्ता एक है या अनेक है – वेदों या उपनिषदों को पढ़ने पर प्रायः यह भ्रम होता है कि सत्ता अनेक हैं। ऋग्वेद में मुख्यतः अग्नि, इन्द्र, वरुण, मरुत आदि देवताओं की स्तुति इस प्रकार की गई है कि यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि सत्ताएँ अनेक हैं। वस्तुतः ये प्रकृति की अधिष्ठात्री शक्तियाँ हैं। अतः वेदों में जब उनकी उपासना अलग–अलग रूपों में की जाती है तो ऐसा लगना स्वाभाविक होता है कि वे सभी ही सर्वशक्तिमान हैं। अतः अनेकेश्वरवादी होने का भ्रम होता है। परन्तु ऋग्वेद का यह विचार कि "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् विद्वान लोगों ने एक ही सत्य को अनेक रूपों में कहा है। ऋग्वेद का यह विचार एकेश्वरवादी होने की पुष्टि करता है। वस्तुतः सभी देवता उसी एक ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किए गए हैं। अध्यात्मोपनिषद् का यह विचार भी इसी की पुष्टि करता है कि "एक मेवा द्वितीय नेह नानास्ति किंचन"। शंकर ने जगत को भ्रम व मिथ्या माना है। वस्तुतः इसी दृष्टिकोण की उन्होंने पुरजोर घोषणा की है – "ब्रह्म सत्यं, जगत मिथ्या" और यही उद्घोषणा उनके अद्वैत दर्शन की मुख्य पहचान बन गई।

ब्रह्म विचार
काल का चक्र तीव्र गति से घूम रहा है, जीवन क्षणभंगुर है और सब कुछ परिवर्तन के अधीन है। कोई भी वस्तु स्थायी नहीं है, सब कुछ प्रवाह रूप है। ऊपर की ओर उठने का संघर्ष, यथार्थ सत्ता की खोज, सत्य को जानने की चेष्टा, इन सबके जानने का आशय है कि प्रवाह रूप जीवन धारा ही सब कुछ नहीं है। इस प्रवाहपूर्ण जगत से परे कोई महान सत्ता अवश्य है, यह आभास होता है। अतः हम एक निरपेक्ष यथार्थ सत्ता को जानने के लिए विवश हैं। यह वह यथार्थ सत्ता है जो प्रतीत रूप, देशिक, भौतिक और जगत, सबसे भिन्न है। ब्रह्म वह है जिसके विषय में यह मान लिया जाता है कि वह मूलभूत है यद्यपि वह किसी भी अर्थ में द्रव्य नहीं है। इसके अस्तित्व के लिए किसी काल या स्थान की आवश्यकता नहीं है वरन् वह सर्वत्र विद्यमान है।
शंकर लिखते हैं कि "ब्रह्म की कोई जाति नहीं, उसमें कोई गुण नहीं, वह कोई कर्म नहीं करता और किसी वस्तु के साथ वह संबद्ध नहीं है। आत्मा तथा ब्रह्म दोनों में सत के सभी लक्षण यथा – चैतन्य, सर्वव्यापकता और आनंद एक समान पाए जाते हैं। आत्मा ब्रह्म स्वरूप है जो विशुद्ध विषयीरूप है वही विशुद्ध विषय रूप है। ब्रह्म केवल अमूर्त रूप सत रूप प्रतीत होता है।
शंकर ने ब्रह्म की सत्ता का मुख्य आधार अनुभव तथा अनुभूति ही माना है। एक दार्शनिक होने के नाते उन्होंने ब्रह्म का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिये हैं। वेद, उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र के आधार पर ब्रह्म की प्रामाणिकता सिद्ध की जा सकती है। ब्रह्म की परम–सत्ता के लिए सबसे बड़ा प्रमाण ग्रंथों के सूत्र हैं। उपनिषदों में कहा गया है – सर्वं खल्विदं ब्रह्म। ब्रह्म का शाब्दिक अर्थ भी उसकी सत्ता का एक प्रमाण है। बृह धातु का अर्थ है वृद्धि, अतः शाब्दिक अर्थों में ब्रह्म का अर्थ सर्वातिशायी सत्ता से है। यह शाब्दिक अर्थ ब्रह्म सत्ता का प्रमाण है।
शंकर के अनुसार ब्रह्म पूर्ण सत्य है इसका खंडन किसी प्रकार भी संभव नहीं है। विरोध के दो प्रकार होते हैं – (1) प्रत्यक्ष विरोध (2) संभावित विरोध। अनुभव या प्रत्यक्ष द्वारा किसी तथ्य का खंडन ही प्रत्यक्ष विरोध है। तार्किक युक्तियों द्वारा किसी तथ्य का संभावित विरोध है। ब्रह्म का खंडन न तो प्रत्यक्ष या अनुभव द्वारा संभव है और न युक्तियों के आधार पर इसका विरोध किया जा सकता है। ब्रह्म त्रिकाल–सत्य है।
शंकर ने ब्रह्म को सच्चिदानंद कहा है। सच्चिदानंद का अर्थ है – सत्+चित्+आनंद। ब्रह्म सत्ता, विशुद्ध चेतना एवं आनंदमय है।

ब्रह्म को भावात्मक ढंग से समझने का यह एक तरीका है किंतु यह ढंग भी अपूर्ण है। निर्गुण ब्रह्म को भावात्मक ढंग से नहीं समझा जा सकता। इसकी व्याख्या नेति–नेति कहकर दी जाती है। ब्रह्म यह नहीं है, ब्रह्म वह नहीं है इत्यादि निषेधात्मक कथन ही इसकी व्याख्या में समर्थ है। वास्तव में ब्रह्म अनिर्वचनीय है। इसकी अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से नहीं हो सकती।

ब्रह्म एवं आत्मा

ब्रह्म एवं आत्मा अलग–अलग हैं अथवा एक हैं के संबंध में शंकर का मानना है कि यह समग्र संसार ब्रह्ममय है। अस्तु आत्मा एवं ब्रह्म एक ही हैं। इस संदर्भ में उपनिषदों के निम्नलिखित उद्धरण प्रमाण रूप में दिए जा सकते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि – "अहं ब्रह्मास्मि" (बृहदारण्यक–2/2/19) मैं ही ब्रह्म हूँ और इसी "अयं आत्मा ब्रह्म" तथ्य की पुष्टि व पुनरावृत्ति मात्र है। "ब्रह्म एवं इंदु विश्वं"। यह विश्व ही ब्रह्म और आत्मा, विश्वीय एवं आत्मिक दोनों ही तत्त्व एकात्मक माने गए हैं। इसी प्रकार उच्चतम ब्रह्म जो आनंद है ठीक आत्मा का स्वरूप, उत्पन्न पदार्थों का अभ्यांतर आत्मा, अग्नि जिसका सिर है, सूर्य और चन्द्रमा जिसकी आँखें हैं, चारों दिशाएँ जिनके कान हैं, वेद जिनकी वाणी है और उन वेदों का प्रादुर्भाव भी उसी से हुआ है, वायु जिसका स्वक्षित है, समस्त विश्व ब्रह्माण्ड जिसका हृदय है और जिसके चरणों से पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ है।

यही व्यापक दृष्टिकोण शंकर ने स्वीकार किया है और भारतीय जनमानस में भी यही व्याप्त है। कबीर ने भी यही कहा है "लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल", "सब घट मेरा साईंया सूनी सेज न कोई"। वस्तुतः उसी ब्रह्म की व्याप्ति सर्वत्र है।

वास्तविक सत्ता क्या है?

देश काल तथा कारण–कार्य भाव से यह संसार अन्तिम नहीं है किन्तु हमारे ज्ञान की श्रेणी से संबंध रखता है। इसका अस्तित्व हमारे आंशिक ज्ञान के कारण है और उस सीमा तक जहाँ तक हमारा ज्ञान आंशिक है। इसका विषय अमूर्त भावात्मक है। निम्न स्तर का ज्ञान सापेक्ष है। अपार का आधार ही हमें परा विद्या तक पहुँचाने में यह योग देता है।

शंकर के दर्शन में हमें तीन प्रकार के अस्तित्व (सत्ता) मिलते हैं

1ण पारमार्थिक या परम यथार्थ सत्ता
2ण व्यावहारिक सत्ता
3ण प्रातिभासिक या भ्रमात्मक सत्ता

पारमार्थिक सत्ता

ब्रह्म ही एकमात्र यथार्थ सत्ता है। संसार का आधारभूत भी ब्रह्म ही है और इसी दृष्टि से यह संसार भी उसी ब्रह्म का अंश रूप है। वही प्राण है, वही वाणी है। अस्तु अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है। परन्तु ड्यूसन जैसे विद्वान नित्यरूप ब्रह्म, इन्द्रियगम्य भौतिक जगत को एकमात्र असत्य और शून्यात्मक कह कर त्याज्य नहीं मानते। जगत के उच्च अनुभव इन्द्रियगम्य भौतिक जगत की वास्तविकता को नित्य सत्ता के अंदर, सांत की वास्तविकता को अनंत के अंतर्गत विद्यमान एक ईश्वर से उत्पन्न जगत की यथार्थता को स्वीकार करते हैं।

व्यावहारिक सत्ता

व्यावहारिक सत्ता मात्र संसार में व्यवहार के लिए है जैसे व्यक्तियों के नाम सांसारिक कार्यों के निष्पादन के लिए होते हैं। इस संसार में सभी कारण व कार्य से बद्ध है।

प्रातिभासिक/आभासिक सत्ता

यह सत्ता देश और काल से बद्ध होती है और आभास मात्र है, भ्रांति है और ईश्वर की छाया मात्र है। वास्तविक सत्ता के ज्ञान के लिए इसका निषेध करना होगा।

शंकर का माया विचार

माया ईश्वर की शक्ति है। यह माया ही है, जो ब्रह्म के स्वरूप पर पर्दा डालकर उसे विश्व के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है। यह शक्ति ईश्वर से पृथक नहीं की जा सकती। जिस प्रकार लौ प्रकाश से अलग नहीं रह सकती, उसी प्रकार माया भी ईश्वर से पृथक नहीं रह सकती। माया ईश्वर रूपी जादूगर का जादू है।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि माया कहाँ रहती है? शंकर के अनुसार माया का आश्रय ब्रह्म है। ब्रह्म अनादि है इसलिए माया भी अनादि है। माया और ब्रह्म अवियोज्य हैं। माया ब्रह्म की शक्ति है। इसी के द्वारा ब्रह्म विश्व का प्रदर्शन करता है।

जीव और ईश्वर में संबंध

शंकर के अनुसार जब ब्रह्म माया युक्त होता है, तब वह ईश्वर बन जाता है। जब वह अविद्या से संबद्ध होता है तब जीव बन जाता है। इस प्रकार ईश्वर और जीव दोनों ही वास्तविक नहीं कहे जा सकते। ये तो ब्रह्म के विवर्तमात्र हैं। जिस प्रकार अग्नि की विभिन्न चिनगारियों में गर्मी पाई जाती हैं, ठीक उसी प्रकार ईश्वर और जीव में शुद्ध चेतना पाई जाती है।

जीव और आत्मा का संबंध

शंकर के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं। आत्मा पारमार्थिक रूप से सत्य है किंतु जीव व्यावहारिक रूप से सत्य है। जब आत्मा, शरीर इन्द्रिय, मन आदि से संबद्ध होकर सीमित हो जाती है, तब इसे ही 'जीव' कहते हैं। अज्ञान का प्रतिबिंब जब आत्मा पर पड़ता है, तब वह जीव बन जाता है। जीव आत्मा का विवर्त है।

शंकर का बंधन तथा मोक्ष का सिद्धांत

शंकर के अनुसार आत्मा मूलतः नित्य, मुक्त, विशुद्ध चैतन्य एवं अनश्वर है। जब यह अपने को शरीर, मन या इन्द्रिय से एकाकार कर लेती है, तब यह बंधन ग्रस्त हो जाती है। आत्मा न तो शरीर है, न मन है, न ज्ञानेन्द्रिय है, न कर्मेन्द्रिय। अज्ञानवश व्यक्ति जब अपनी आत्मा को इनमें से किसी के साथ मिला देता है, तब वह बंधन में जकड़ जाता है। वह शरीर, मन एवं इन्द्रियों के सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख समझकर सदैव परेशान रहा करता है। शंकर के अनुसार बंधन का मूल कारण अविद्या है और मोक्ष का साधन ज्ञान है। शंकर के अनुसार ज्ञान ही मोक्ष दिलाने में समर्थ है। सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है? शंकर का कहना है कि वेदांत दर्शन के सम्यक् अध्ययन से ही व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता है। अद्वैत वेदान्त के अध्ययन के लिए व्यक्ति को कई शर्तों का पालन करना पड़ता है। वे शर्तें 'साधन चतुष्टय' हैं। जो इस प्रकार हैं –

1. नित्यानित्यवस्तुविवेक
2. इहामुत्रार्थभोगविराग
3. शमदमादिसाधन
4. मुमुक्षुत्व

उपरोक्त चारों शर्तों का पालन करके व्यक्ति वेदांत के अध्ययन के योग्य हो पाता है। जब साधक गुरु के साथ श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा अपने विषय में वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब वह बंधन से मुक्त हो जाता है। आत्मज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है। आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं। इसलिए जब साधक अपने विषय में वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब ब्रह्म को भी जान जाता है। तब उसे आत्मा और ब्रह्म में कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता।

इस प्रकार आत्मज्ञान ही मोक्ष है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शंकर ने ब्रह्म को ही एकमात्र पारमार्थिक सत्य स्वीकार किया है। उन्होंने जीव, जगत और ईश्वर आदि सभी को व्यावहारिक धरातल पर रखा है। ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है, यह शंकर के अद्वैत दर्शन की मूल धारणा है।

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय

संदर्भ

1. Datta and Chatterjee, An Introduction to Indian Philosophy
2. सिन्हा, एच.पी., भारतीय दर्शन की रूपरेखा
3. डॉ. शर्मा, आर.पी., भारतीय दर्शन
4. डॉ. शर्मा, आर.ए., तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, मूल्यमीमांसा एवं शिक्षा
5. शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, व.म.खु.वि. कोटा (राजस्थान) की अध्ययन सामग्री